करबला का आफ़ाक़ी पैग़ाम

क़ाएदे मिल्लत मौलाना सै० कल्बे जवाद नक़वी, जनरल सेक्रेट्री मजलिस उलमा-ए-हिन्द

(1)

कुछ इन्सानी अक़दार ऐसी हैं जो आफ़ाक़ी, जावेदां, नाक़ाबिले तग़ैय्युर व तबद्दुल और दूसरी लफ़्ज़ों में ज़मान व मकान से फ़रोतर होती हैं। उन्हीं में से एक आज़ादी की तमन्ना और ग़ुलामी से नफ़रत है, मगर कभी-कभी इन्सान को मज्बूरन ग़ुलामी इख़्तियार करना पड़ जाती है और इसका सबब कभी तो मौत का ख़ौफ़ होता है और कभी दुनिया की तमा और लालच। ज़िंदगी से मोहब्बत, मौत का ख़ौफ़ उसे ज़िल्लतो ख़्वारी की ज़िंदगी गुज़ारने पर मजबूर कर देता है। वह चाहता है कि ज़िंदा रहे चाहे ज़लील होकर चाहे ग़ुलाम बनकर, लेकिन इमाम हुसैन[अ०] ने मदीने से लेकर करबला तक क़दम-क़दम पर यही दर्स दिया कि ज़िंदगी उस वक़्त तक जीने के लायक़ है, जब तक वह इज़्ज़त के साथ हो वरना ज़िल्लत की ज़िंदगी से इज़्ज़त की मौत बेहतर है। जियो तो आज़ाद रहकर जियो, वरना मौत को ख़ुशी-ख़ुशी गले लगा लो।

जब इमाम हुसैन[अ०] मदीने से मक्के की तरफ़ हिजरत फ़रमा रहे थे तो कई लोगों ने मश्वरा दिया कि यज़ीद की बैअत करके अपनी जान बचा लीजिए, मगर मौला ने सख़्ती से जवाब दियाः ''मुझे ज़िल्लत की ज़िंदगी मंज़ूर नहीं'' जब मदीना मुनव्वरा के गवर्नर वलीद ने इमाम[अ०] को अपने क़स्र में बुलाया और यज़ीद के लिए बैअत तलब की तो आप ने यज़ीद में पाई जाने वाली ख़राबियाँ बयान फ़रमाईं और नुमाइन्द-ए-इलाही की हैसियत से अपनी ज़िम्मेदारियाँ बयान फ़रमाईं और आख़िर में एक तारीख़ी जुमला इरशाद फ़रमाया, ''मुझ जैसी कोई भी शख़सियत (मौत के ख़ौफ़ या दुनिया की तमा में आकर) यज़ीद जैसों की बैअत नहीं कर सकती''। मरवान ने भी इमाम[अ०] को समझाने की कोशिश की। मरवान की बातों का ख़ुलासा यह था कि क्यों दर्दसरी मोल ले रहे हैं। काफ़ी बड़ा वज़ीफ़ा मिलेगा, हो सकता है कोई बड़ा ओहदा भी मिल जाए। आपको नमाज़ें पढ़ने से, रोज़े रखने से, हज पर जाने से कौन रोक रहा है। ख़ूब कारे ख़ैर कीजिए। जितना दिल चाहे सवाब कमाइए। दीन भी आपका होगा, दुनिया भी आपकी होगी। दुनिया में किसी भी मसलक या मज़हब से तअल्लुक़ रखने वाली अकसरियत का तर्ज़े फ़िक्र और तरीक़-ए-अमल यही है कि जिसकी नुमाइंदगी मरवान कर रहा था और यज़ीद के ज़माने में मिल्लते इस्लामिया की अक्सरियत ने यही तर्ज़े अमल इख़्तियार कर लिया था, लेकिन इमाम हुसैन[अ०] ने जवाब में वह आयत तिलावत फ़रमाइ जो उमूमन किसी की मौत पर पढ़ी जाती है- ''हम सब अल्लाह ही के लिए हैं और उसी की बारगाह में वापस जाने वाले हैं''। (सूरए बक़रा, 156) अलल इस्लाम अगर उम्मत का रहबर यज़ीद जैसा हो तो इस्लाम का ख़ात्मा पढ़ लेना चाहिए, यानी इस्लाम के बाक़ी रहने की कोई उम्मीद नहीं रह जाएगी।

आज भी अक्सर मुसलमान मुल्कों की ज़िल्लत और ख़्वारी का बुनियादी सबब यही मौत का ख़ौफ़ और दुनिया की तमा है, यही वजह है कि अमरीका और उसकी हलीफ़ ताक़तें तक़रीबन पूरे आलमे इस्लाम पर क़ाबिज़ हो चुकी हैं। जब मफ़ाद परस्त मुसलमान रहनुमाओं और मोलवियों के सामने यह ज़मीनी हक़ीक़त पेश होती है तो (बहुत माज़रत के साथ यह जुमला लिखा जा रहा है) वह शुतुरमुर्ग़ की तरह अपने सर रेत में दबाकर इस तल्ख़-तरीन वाक़िईयत ये इन्कार कर देते हैं, लेकिन अलहम्दुलिल्लाह मुसलमान अवाम में यही आज़ादी की फ़ितरी तमन्ना और ग़ुलामी से नफ़रत आहिस्ता-आहिस्ता सर उभार रही है, जिसकी बेहतरीन मिसाल मिस्र है, मगर इसी के साथ-साथ ख़तरनाक पहलू यह है कि

अमरीका इन्तेहाई चालाकी और मक्कारी से इस अवामी बेदारी को झूठी हमदर्दी और मदद करने के बहाने हाइजेक करने की कोशिश में है और दोबारा गुलामी की ज़ंजीरों में जकड़ने की कोशिश कर रहा है, जिसकी मिसालें लीबिया और यमन हैं।

करबला का आफ़ाक़ी और बुनियादी पैग़ाम इज़्ज़त की ज़िंदगी गुज़ारना और गुलामी से नफ़रत करना है और यह पैग़ाम मौला ने आख़िरी सांसों तक दिया है। जब इमाम अलैहिस्सलाम 71 लाशे उठा चुके हैं जिनमें अटठारह बरस के शबीहे रसूलुल्लाह अली अकबर[अ०] की मैय्यत भी है हाथों पर छः महीने का बच्चा तीरे हुरमला का निशाना बन चुका है। ज़ख़्मों की वजह से इमाम[अ०] ज़मीन पर दराज़ हैं। उठने की ताक़त नहीं। इसी आलम में शिम्र ज़िल जौशन ने ख़ेमों पर हमला कर दिया जहाँ औरतें और बच्चे ही बाक़ी बचे थे। जब इमाम[अ०] ने यह मंज़र देखा तो बचे हुए ख़ून के क़तरों की पूरी ताक़त जमा करके आवाज़ दी ''ऐ शीईयाने आले अबुसुफ़यान अगर तुम्हारा कोई दीन नहीं और आख़िरत से बेख़ौफ़ हो तो कम अज़ कम अपनी दुनिया ही में आज़ाद बन जाओ''। करबला के सारे पैग़ामात किसी एक नस्ल या किसी एक ज़माने के लिए नहीं हैं, बल्कि 61[हि०] से लेकर ता क़यामे क़यामत आने वाले तमाम ज़मानों और इन्सानों के लिए हैं। आज भी तारीख़ के उफ़ुक़ पर आपका क़ौल जगमगा रहा है और हर ग़ैरतदार इन्सान को दावते फ़िक्र दे रहा है- ''ज़िल्लत की ज़िंदगी से इज़्ज़त की मौत बेहतर है''।

(बशुक्रिया रोज़नामा 'राष्ट्रीय सहारा' (उर्दू) 2 दिसम्बर 2011[ई०])

(2)

पिछले मज़मून में अर्ज़ किया गया कि करबला ज़माने की हदबन्दियों में महदूद नहीं है और न किसी ख़ास फ़िरक़े से मख़सूस है, किसी भी मज़हब, ख़ित्त-ए-ज़मीन या किसी भी ज़माने का इन्सान हो, उसे अपने ज़मीर की पुकार का जवाब करबला में मिल जाएगा। किसी शायर ने बहुत अच्छा शेर कहा है:-

ये हम ने कब कहा कि हमारी है करबला
हक़ बात तुम कहो तो तुम्हारी है करबला

और बहुत अच्छी बात कही गई है कि अगरचे इमाम हुसैन[अ०] अरब की सरज़मीन से तअल्लुक़ रखते थे, ख़ानदाने बनी हाशिम के चश्मो चिराग़ थे, ख़ानवाद-ए-रिसालत के एक फ़र्द थे और दीने इस्लाम के नुमाइंदे थे, मगर जिस तरह सूरज निकलता मश्रिक़ से है, मगर सारी दुनिया को रौशनी देता है, बादल उभरते समंदर से हैं, मगर हर खेत पर बरसते हैं। फूल की ख़ुश्बू किसी मज़हब या फ़िरक़े की तफ़रीक़ नहीं करती, गुलाब का फूल खिलता है किसी एक घर में मगर सारे इलाक़े को मोअत्तर कर देता है। इसी तरह से करबला में इमाम हुसैन[अ०] का पैग़ाम भी आफ़ाक़ी है और हर इन्सान उस से फ़ायदा हासिल कर सकता है।

इन्सान फ़ितरतन अम्न पसंद है, लड़ाई, झगड़ा, फ़ितना, फ़साद, ज़ुल्मो सितम उसकी तबीअत पर बार होता है, इसी के लिए क़ानून बनाए जाते हैं और उलमाए इल्मे अख़लाक़, इन्सानी अख़लाक़ के ज़ाब्ते मुअय्यन करते हैं। इन तमाम चीज़ों का मक़सद यह होता है कि फ़ितना व फ़साद मिटे और अम्न व अमान क़ायम हो। करबला का भी यही पैग़ाम है कि अम्नो अमान क़ायम हो और दुनिया से फ़साद ख़त्म हो। अगर इमाम हुसैन[अ०] के बताए हुए उसूलों और तालीमात पर सख़्ती से अमल हो तो दुनिया से जंग व जिदाल का ख़ात्मा नामुमकिन नहीं है, जिस वक़्त मदीने के गवर्नर वलीद इब्ने उतबा ने इमाम हुसैन[अ०] को अपने दारुल इमारह में बुलाया और यज़ीद की तख़्तनशीनी की ख़बर दी, साथ ही साथ बैअत का मुतालबा भी किया। इमाम हुसैन[अ०] ने इन्कार किया और उठकर जाने लगे। उस वक़्त वहाँ मरवान बिन हकम मौजूद था, उसने फ़ौरन कहा, ऐ वलीद अगर तुम ने इस वक़्त हुसैन[अ०] को जाने दिया तो यह फिर हाथ न आएंगे, लेहाज़ा या तो इन से इसी वक़्त बैअत ले ले या उनका सर काट दे। इस वक़्त इमाम हुसैन की आवाज़ बुलंद हुई और आप ने सख़्त लहजे में फ़रमाया, या इब्ने ज़ुरक़ा (ऐ नीली आँखों वाली औरत के बेटे) तेरी या वलीद की इतनी जुराअत नहीं कि रसूलुल्लाह[स०] के नवासे का सर काट सके। तारीख़ में दर्ज है कि उस वक़्त इमाम हुसैन[अ०] के साथ बनी हाशिम के कई जवान आए थे,

मगर वह दरवाज़े पर रुक गए थे और फ़क़त इमाम[अ०] अन्दर गए थे। जब इमाम[अ०] की आवाज़ बलन्द हुई और बाहर पहुँची तो इमाम हुसैन[अ०] की जान का ख़तरा महसूस करते हुए वह सब वलीद के घर में दाख़िल हो गए और इमाम हुसैन[अ०] के भाई हज़रत अब्बास[अ०] ने तलवार निकाल कर चाहा कि वलीद पर हमला करें। उस वक़्त इमाम हुसैन[अ०] ने तारीख़ी जुमला इरशाद फ़रमाया, ऐ अब्बास! रुक जाओ। हम जंग में पहल नहीं करते और जनाब अब्बास को हमला करने से रोक दिया। इस तरह करबला से कुछ पहले जब हुर के एक हज़ार लश्कर ने इमाम हुसैन[अ०] का रास्ता रोका और कहा कि इब्ने ज़ियाद का हुक्म है कि गिरफ़्तार करके कूफ़ा ले आओ, लेकिन इमाम[अ०] ने उस वक़्त भी जंग से परहेज़ किया। हालांकि इमाम[अ०] के कुछ साथियों ने मश्वरा भी दिया कि इस वक़्त दुश्मन की तादाद कम है, इन से जंग करना आसान है, बाद में तादाद बढ़ सकती है, लेकिन मौला ने वही जुमला दोहराया कि हम जंग में पहल नहीं करते और यहीं पर इमाम हुसैन[अ०] ने इन्सानियत का आला तरीन नमूना पेश करते हुए दुश्मन के लश्कर को अपना सारा पानी पिला दिया। करबला के मैदान में जब इब्ने ज़ियाद के सिपहसालार उमर इब्ने साद के लश्कर ने आकर इमाम[अ०] के क़ाफ़ले को घेर लिया तो उस वक़्त इमाम[अ०] के ख़ेमे नहरे अलक़मा के किनारे लगे हुए थे, ताकि बच्चों के लिए पानी के हुसूल में आसानी रहे, क्योंकि हुसैन के साथ बहुत छोटे-छोटे बच्चे भी थे, जिनमें एक छः महीने का अली असग़र[अ०] भी था। उमर बिन साद ने आकर इब्ने ज़ियाद का हुक्म सुनाया कि हुसैन[अ०] के ख़ेमे दरिया के किनारे से हटाकर बेआबो ग्याह मैदान में लगवाए जाएं। यह सुनते ही इमाम हुसैन[अ०] के पूरे क़ाफ़ले में कोहराम मच गया। बड़ी सख़्त मंज़िल थी, इमाम हुसैन[अ०] के लिए तपता हुआ सहरा, छोटे-छोटे बच्चों का साथ और इब्ने ज़ियाद का ग़ैर इंसानी हुक्म। इमाम के साथ आए हुए जवान बिफर गए। एलान किया कि कोई हमारे ख़ेमों को हाथ लगाकर तो देखे। इन बिफ़रे हुए शेरों को समझाना था, जिनका गुस्सा हक़ बजानिब था। इमाम हुसैन[अ०] आहिस्ता-आहिस्ता इन जवानों के सामने आए और आते ही ऐसा जुमला कहा कि सारे जवानों का ग़ुस्सा झाग की तरह बैठ गया। फ़रमाया, ''ऐ मेरे शेरों! मेरी जान तुम पर फ़िदा हो जाए। सब्र करो ख़ेमे दरिया से हटा लो, क्योंकि हमें जंग में इब्तेदा नहीं करना है।

हम तो समझते हैं कि अगर इमाम हुसैन[अ०] के इसी एक जुमले को तमाम सरबराहाने मुमालिक तहरीर करके अपने सामने रख लें और अहद कर लें कि इसी उसूल के पाबंद रहेंगे कि हम जंग में पहल नहीं करते तो जब किसी तरफ़ से जंग में इब्तेदा नहीं होगी तो दुनिया में कभी जंग भी नहीं होगी। करबला का यह एक ऐसा पैग़ाम है, जो हर ज़माने में पूरी इन्सानियत के लिए अम्न का ज़ामिन है और यहीं से बाज़ मोर्रिख़ीन और सीरत निगारों की जानिब से जो एक ग़लतफ़हमी फैलाने की कोशिश की गई है, इसकी तरदीद भी हो जाती है। वह ग़लतफ़हमी यह है कि रसूले इस्लाम[स०] के बड़े नवासे इमाम हसन[अ०] सुलह पसंद थे। उनकी तबीअत और मिज़ाज में सुलहपसंदी थी, लेहाज़ा उन्होंने सुलह फ़रमाइ और क्योंकि छोटे नवासे इमाम हुसैन[अ०] की तबीअत अम्न मुख़ालिफ़ और मिज़ाज जंग पसंद था, इसीलिए आप ने यज़ीद से सुलह करना क़ुबूल नहीं फ़रमाया और मैदाने करबला में जंग करके अपने और अपने पूरे ख़ानवादे को क़ुर्बान कर दिया। हर साहेबे फ़हम इस हक़ीक़त से वाक़िफ़ है कि अगर किसी का मिज़ाज जंग पसंद हो और अम्नो अमान उसकी तबीअत से मेल न खाता हो तो वह लड़ने में पहल करने के लिए बहाने ढूँढता है। ऊपर कितने मवाक़े बयान किए गए, जब सख़्त मिज़ाज इन्सान के लिए जंग हतमी थी, मगर इमाम[अ०] ने ज़बरदस्त क़ुव्वते बर्दाश्त का मुज़ाहेरा करते हुए जंग को टाल दिया। यह इस बात की बेहतरीन दलील है कि अल्लाह तआला का नुमाइंदा अपने अमल में मिज़ाज का पाबन्द नहीं होता, बल्कि मशीय्यत और दीन के उसूलों का पाबन्द होता है।

(बशुक्रिया रोज़नामा 'राष्ट्रीय सहारा' (उर्दू) 16 दिसम्बर 2011[ई०])

(जारी)